स्याद्वाद सिद्धान्त—मनन और मीमांसा

श्री रमेश मुनि शास्त्री

प्रत्येक दर्शन का एक मौलिक और विशिष्ट सिद्धान्त होता है, जिसके आधार पर उसके विचारों का भव्य भवन आधारित है। जैन दर्शन का अपना गम्भीर चिन्तन है, अपना मौलिक दृष्टिकोण है, उसका ज्योतिर्मय स्वरूप जैन साहित्य के प्रत्येक पृष्ठ पर अंकित है।

जैन दर्शन का प्राणतत्व अनेकान्तवाद है, इसकी सुदृढ़ नींव पर ही विचार और आचार का सुरम्य प्रासाद खड़ा होता है। इसलिए यहां यह जानना अतीव आवश्यक है कि अनेकान्तात्मक दृष्टिकोण का मूलभूत आधार क्या है? जैन वाङ्मय का गहराई से पर्यवेक्षण करने पर सुस्पष्ट हो जाता है कि अनेकान्त-दृष्टि सत्य पर आधारित है। प्रत्येक मानव सत्य-ज्योति का संदर्शन करना चाहता है, उसका साक्षात्कार करना चाहता है; जो व्यक्ति सत्य को एक ही दृष्टि से देखता है तो वह दृष्टि परिपूर्ण और यथार्थ दृष्टि नहीं है। अनेकान्तवादी पदार्थ के स्वरूप को एक ही दृष्टि से नहीं अपितु विभिन्न दृष्टि-बिन्दुओं से देखता है, यही कारण है कि उस अनेकान्त-दृष्टि में पूर्णता और यथार्थता रही हुई है।

इसी सन्दर्भ में यह तथ्य ज्ञातव्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को वस्तु का यथार्थ स्वरूप पूर्णरूपेण ज्ञात हो सके यह असम्भव है। पूर्ण पुरुष ही अपने दिव्य ज्ञान से वस्तुमात्र के परिपूर्ण और यथार्थ स्वरूप को देखते हैं। परन्तु वे उसे वाणी के द्वारा अभिव्यक्त नहीं कर सकते। जब पूर्ण पुरुष भी शब्दों के द्वारा पदार्थ के पूर्ण स्वरूप को प्रकट नहीं कर सकते, प्रकाशित नहीं कर सकते; तब अपूर्व व्यक्ति वस्तु के पूर्ण रूप को प्रकट करने की क्षमता रखता हो, यह सम्भव नहीं है।

प्रत्येक पदार्थ अखण्ड है, वह अपने आप में एक है, अनन्तधर्मात्मक है, द्रव्यपर्यायात्मक है। उसमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तीनों ही विद्यमान हैं। उत्पाद और विनाश परिवर्तन के प्रतीक हैं। ध्रौव्य नित्यता का सूचक है। गुण नित्यता का बोधक है और पर्याय अनित्यता का द्योतक है। इस पर से यह प्रकट है कि प्रत्येक पदार्थ के दो रूप होते हैं—नित्यता और अनित्यता, इनमें प्रथम पक्ष गुण का परिचायक है और उत्तर पक्ष उत्पाद और व्यय अर्थात् पर्याय का संसूचक है।

प्रत्येक वस्तु के स्थायित्व में स्थिरता, समानता और एकरूपता रहती है। यह सच है कि परिवर्तन के समय में भी वस्तु के पूर्व रूप का विनाश होता है और उत्तर रूप की उत्पत्ति होती है। वस्तु के इस परिवर्तन में उत्पाद और व्यय होता है, फिर भी वस्तु का मूल स्वभाव विनष्ट नहीं हो सकता।

प्रस्तुत विवेचन अपने आप में गम्भीरता को समेटे हुए है। इसलिये विषय की स्पष्टता के लिए उदाहरण प्रस्तुत करना अति-आवश्यक है। एक स्वर्णकार है, वह स्वर्ण के हार को तोड़कर कंकण बनाता है। इसमें हार का विनाश होता है और कंकण का निर्माण होता है। परन्तु इस उत्पाद और विनाश में स्वर्ण का स्थायित्व बना रहता है। ठीक इसी तरह पदार्थ के उत्पाद-व्यय के समय में मूल स्वभाव की स्थिरता बनी रहती है। उसका न तो उत्पाद होता है और न विनाश ही। वस्तु की यह जो स्थिरता है उसी को नित्य ध्रुव और शाश्वत कहते हैं।

द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से प्रत्येक वस्तु नित्य है और पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से वह अनित्य है, अशाश्वत है, क्षणिक और अस्थिर है। उक्त कथत का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि वस्तु द्रव्य की दृष्टि से नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है।

द्रव्य और सत् दो नहीं हैं, एक हैं। द्रव्य का जो लक्षण है, वही लक्षण सत् का है। इस संदर्भ में ज्ञातव्य तथ्य यह है कि जैन दर्शन द्रव्य अथवा सत् को एकान्त रूप से नित्य स्वीकार नहीं करता है और न उसको एकान्त अनित्य ही मानता है, वह उसको नित्यानित्य मानता है।

जैन दर्शन की यह विचारधारा सर्वथा मौलिक है कि वह पदार्थ में उत्पाद और व्यय मानता है, परन्तु यह मूलभूत पदार्थ का उत्पाद-व्यय नहीं है। प्रत्येक वस्तु की जो-जो पर्याय है, उन्हीं का उत्पाद है, व्यय है। उत्पाद और व्यय की व्याख्या को समझना अति-आवश्यक है। स्वजाति का त्याग किए बिना पर्यायान्तर का अधिग्रहण करना उत्पाद कहलाता है। स्वजाति का त्याग किये बिना पर्याय के पूर्व भाव का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विगम होना 'व्यय' कहलाता है। जैसे मिट्टी का पिण्ड स्वजाति को छोड़े बिना घट रूप पर्यायान्तर को ग्रहण करता है, यह उसका उत्पाद कहलाता है। घट की आकृति में परिणत होते ही मिट्टी पिण्ड की आकृति का व्यय हो जाता है। पिण्ड और घट रूप इन दोनों अवस्थाओं में जो मिट्टी का अन्वय है उसको ध्रौव्य कहा जाता है। यहां पर मिट्टी का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है, वह केवल पदार्थ के स्वरूप को समझने के लिए दिया गया, क्योंकि मिट्टी का कोई द्रव्य नहीं होता वह पुद्गल द्रव्य का पर्याय है। यही कारण है कि जैन दर्शन उसको एकान्ततः नित्य नहीं मानता है जो परमाणु पुद्गल है वह वास्तव में नित्य है। वह सदा के लिए परमाणु रूप में रहेगा, उसका कभी भी विनाश नहीं होता।

उपर्युक्त विवेचन को तात्पर्य की भाषा में यों भी कहा जा सकता है कि प्रत्येक पदार्थ में नित्यत्व और अनित्यत्व धर्म विद्यमान हैं और उन्हें हम किसी अपेक्षा विशेष से समझ सकते हैं। इसी अपेक्षा दृष्टि को जैन दर्शन की भाषा में नय कहते हैं। नयवाद में पदार्थ के स्वरूप को समझने की क्षमता है अतएव सभी दृष्टियों और दर्शनों का समावेश नयवाद में हो जाता है। द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से हम वस्तु के नित्यत्व पक्ष का कथन करते हैं, उसके नित्यत्व स्वरूप को देखते हैं, परखते हैं। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से हम उसके पर्यायों को परिवर्तित होते हुए देखते हैं, जिससे वस्तु का पर्याय रूप अनित्य सिद्ध होता है।ये दोनों ही अपेक्षा-दृष्टियाँ यथार्थता को लिए हुए हैं। अतः दोनों ही सत्यांश हैं। दोनों ही नय अपनी-अपनी अपेक्षा से वस्तु स्वरूप का अवलोकन करते हैं, परन्तु अन्य नय का अपलाप नहीं करते। अतः वह सम्यग्नय कहलाता है और इस नय से वस्तु स्वरूप को देखने वाला दर्शन भी सम्यग्दर्शन कहलाता है।

अनेकान्तवाद सिद्धान्त का आधार है नयवाद। नय का अभिप्राय है वस्तुगत अनन्त गुण-धर्मों को अनेक सापेक्ष-दृष्टियों से समझना, जैसे एक आम्रफल है, उसका आकार भी है, इस ओर गंध भी है, वर्ण एवं स्पर्श भी है, इस प्रकार अनेक धर्म हैं। यदि हम उस फल को आकार की दृष्टि से देखते हैं तो वह गोल, त्रिकोण अथवा अन्य किसी भी आकार वाला प्रतीत होता है। रस के दृष्टिकोण से वह खट्टा, मीठा प्रतीता होगा। ये सब सापेक्ष दृष्टियाँ नयवाद के अन्तर्गत आ जाती हैं।

जितने भी एकान्तवाद प्रधान दर्शन हैं, उन सभी का अन्तर्भाव 'नयवाद' में हो जाता है, कारण यह है कि वे वस्तु के मूल स्वरूप को एक ही दृष्टि बिन्दु से देखते-परखते हैं और उस दृष्टि में सत्य का अंश अवश्य है, परन्तु वे अपने दृष्टिकोण सत्य और अन्य के दृष्टिकोण को एकान्त रूप से मिथ्या बताते हैं अतः वे अपने आप में स्वयं ही मिथ्या होते हैं। जैसे द्रव्य की दृष्टि से आत्मतत्व के नित्यत्व को देखने वाला दर्शन यह आग्रह रखता है कि आत्मा नित्य ही है, वह कभी भी अनित्य है ही नहीं, नित्यवाद ही सत्य है, अनित्यवाद का जो सिद्धान्त है वह पूर्णरूपेण असत्य है। इसी एकान्तवादप्रधान आग्रह के कारण वह नय नयाभास हो जाता है, मिथ्यानय हो जाता है, यह भी एक ज्ञातव्य तथ्य है कि उसमें सत्यांश है, किन्तु एकान्त का आग्रह, सत्यांशों का तिरस्कार और अपनी दृष्टि का व्यामोह इन सभी कारणों से उसको नयाभास अथवा मिथ्यारूप में परिणत कर देता है। परिणामतः उनमें वैचारिक संघर्ष की ज्वाला धधकती है, दहकती है और वे अपने-अपने मंतव्य को सत्यांश को पूर्णरूपेण सत्य और दूसरों के अभिमत को असत्य सिद्ध करने के लिए तर्क और वितर्क के तीर तलवार को लेकर वाग्युद्ध के मैदान में पहुंच जाते हैं और पारस्परिक संघर्ष भी प्रारम्भ हो जाता है, उसी संघर्ष रूपी ज्वाला को उपशान्त करने के लिये ज्योतिर्मय प्रभु महावीर ने एकान्तवाद के स्थान में अनेकान्तवाद की परम शीतल सरिता प्रवाहित की। उन्होंने नित्यत्व-अनित्यत्व आदि पक्षों को लेकर संघर्षरत दार्शनिकों को सुस्पष्ट और मधुर भाषा में कहा तुम सभी ने सत्य को नहीं समझा है, तुम्हारा एकान्तवाद मूल से भरा है। वस्तुस्थिति यह है कि पदार्थ न एकान्ततः नित्य है, न ध्रुव है, न शाश्वत है और न वह अनित्य—अशाश्वत है, वह अनन्तधर्मात्मक है, अतएव उसको एक ही धर्म से युक्त कहना सत्य का घोर तिरस्कार है।

अनेकान्त और स्याद्वाद दोनों एक ही सिद्धान्त के दो पहलू हैं। यह भी एक तथ्य ज्ञातव्य है कि बाहर से एक सदृश प्रतीत होते हुए भी दोनों में अन्तर अवश्य है। अनेकान्त पदार्थ के मूल स्वरूप को देखने की एक विचार-पद्धति है। स्याद्वाद देखे हुए स्वरूप को अभिव्यक्त करने की भाषा-पद्धति है। अनेकान्त एक दार्शनिक दृष्टिकोण है और स्याद्वाद उसकी भाषा है। उस सिद्धान्त का प्ररूपण है।

वस्तुतः अनेकान्त चिंतन की अहिंसामयी प्रक्रिया है। इसका मूल सम्बन्ध मनुष्य के विचारों से जुड़ा हुआ है, स्याद्वाद अनेकान्त-प्रधान चिंतन की अभिव्यक्ति की शैली है, यही कारण है कि स्याद्वाद उक्त प्रकारीय विचार को अभिव्यक्ति देने की लिए अहिंसामयी भाषा की अन्वेषणा करता है।

अनेक, अंत और वाद इन तीन शब्दों से अनेकांतवाद शब्द की निष्पत्ति होती है।अनेक शब्द का वाच्य अर्थ है—नाना, अन्त का अर्थ है वस्तु-धर्म, वाद का अर्थ मान्यता है। एक पदार्थ में विभिन्न विरोधी-अविरोधी धर्मों की मान्यता का नाम अनेकान्तवाद है। इसकी दिव्य-दृष्टि का ध्वनित अर्थ है कि प्रत्येक पदार्थ में सामान्य और विशेष रूप से, नित्यत्व की अपेक्षा से, अनित्यत्व की अपेक्षा से, सद्रूप से, असद्रूप से अनन्त-अनन्त धर्म विद्यमान हैं। अनेकान्तवाद का उन्मुक्त घोष है कि प्रत्येक वस्तु में हर गुण-धर्म अपने धर्म के साथ रहता है। जहां अनेकान्तवादी दृष्टिकोण हमारी बुद्धि को पदार्थ के सभी धर्मों की ओर समग्र रूप से खींचता है, वहां स्याद्वाद वस्तु के धर्म का प्रधान रूप से परिबोध कराने में सर्वथा रूप से समर्थ है। अनेकान्तवाद और स्याद्वाद—इनमें यह भी अन्तर है कि अनेकान्त दृष्टि का फल विधानात्मक है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और स्याद्वाद का फल उपयोगात्मक है। सारपूर्ण शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि अनेकान्तवाद ने स्याद्वाद की मान्यताओं को जन्म दिया है अतः अनेकान्तवाद एक वृक्ष है और उसका फल स्याद्वाद है।

स्याद्वाद की यह उल्लेखनीय विशेषता है कि वह हमें चिन्तन की एकांगी पद्धति से बचाकर सर्वांगीण विचार के लिए उत्प्रेरित करता है, इसका परिणाम यह आता है कि हम सत्य के विभिन्न पहलुओं से भली-भांति परिचित हो जाते हैं। समग्र सत्य को समझाने के लिए स्याद्वाद दृष्टि ही एकमात्र सफल साधन है। स्याद्वाद पद्धति से ही विराट् सत्य का साक्षात्कार हो जाता है, जो विचारक पदार्थ के अनेक गुण धर्मों को ओझल करके किसी एक ही धर्म का प्रतिपादन करता है, उसी धर्म को पकड़कर अटक जाता है, वह कभी भी सत्य ज्योति के परिदर्शन नहीं कर सकता। जब हमारा चिंतन अभेद प्रधान होता है तब प्रत्येक प्राणी में चेतना की दृष्टि से समानता है और चेतना से बढ़कर सत्ता को आधार बताते हैं। तो चेतन और अचेतन समझा हुआ पदार्थ सत् स्वरूप में एकाकार प्रतीत होता है। जब हमारा दृष्टिकोण भेद की प्रधानता को लिए होता है, तो अधिक-से-अधिक समान प्रतीत हो रहे दो पदार्थों में भिन्नता होती है।

स्याद्वाद यह एक दिव्य-आलोक है जो हमें निराशा के सघन अंधकार से बचाता है और वह दिव्य-दृष्टि हमें एक ऐसी विचारधारा की ओर ले जाती है, जहां पर सभी प्रकार के विरोधात्मक विचारों का दार्शनिक समस्याओं का निराकरण हो जाता है।

अनेकान्त अनन्त-धर्म वस्तु-स्वरूप की एक दृष्टि है, और स्याद्वाद एवं सप्तभंगीवाद ये दोनों उस ज्ञानात्मक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने के लिए सापेक्ष वचन पद्धति है। अनेकान्त एक लक्ष्य है तो स्याद्वाद सप्तभंगीवाद साधन है, उस समझाने का एक सुन्दर प्रकार है। अनेकान्त का जो क्षेम है वह बहुत ही व्यापक है और स्याद्वाद सप्तभंगीवाद का क्षेम व्याप्य है। इस प्रकार इन दोनों में व्याप्य-व्यापक-भाव सम्बन्ध है।

सप्तभंगीवाद स्याद्वाद का आधारस्तम्भ है। पदार्थगत जो धर्म है वह सापेक्ष है, यही कारण है कि उसका विश्लेषण भी अपेक्षा दृष्टि से होगा। इसी सन्दर्भ में यह एक तथ्य ज्ञातव्य है कि स्याद्वाद जहां पदार्थ का सापेक्ष विश्लेषण प्रस्तुत करता है, वहां सप्तभंगीवाद पदार्थगत अनन्त-अनन्त धर्मों में से प्रत्येक गुण-धर्म का तर्क-संगत विश्लेषण करने की प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है।

यहां पर एक विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है कि यह सप्तभंगी क्या है ? और उसका उपयोग क्या है ? प्रस्तुत प्रश्न का समाधान यह है कि प्रत्येक पदार्थ के स्वरूप प्रतिपादन में सात प्रकार के वचनों का प्रयोग किया जाता है। एक वस्तु में अविरोधभाव से एक धर्म के विषय में जो विधि निषेध की परिकल्पना की जाती है, उस धर्म के सम्बन्ध में सात प्रकार से विवेचन विश्लेषण सम्भव है इसीलिए इसे सप्तभंगी कहते हैं। भंग शब्द का वाच्य अर्थ है—विकल्प, प्रकार या भेद। प्रत्येक शब्द के दो अर्थ होते हैं—विधि और निषेध। प्रत्येक विधि के साथ निषेध जुड़ा हुआ है और प्रत्येक निषेध के साथ विधि। एकान्ततः न कोई विधि है और एकांत रूप से न कोई निषेध है। प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में जो भी विवेचन विश्लेषण किया जाता है वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से दिया जाता है। इस सन्दर्भ में यह ज्ञातव्य है कि जिस वस्तु का विवेचन किया जा रहा है, उस विवेच्य वस्तु के साथ **स्यात्** पद का प्रयोग करना अतीव आवश्यक है, क्योंकि प्रधान अथवा गौण की विवक्षा सूचना इस पद के माध्यम से संप्राप्त होती है।

स्यात् पद **अस्-भुवि** धातु से निष्पन्न हुआ है। स्यात् यह संस्कृत रूप है और इसका प्राकृत रूपान्तर सिया होता है। जैन दर्शन में इसका प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ में किया गया है। इसका अर्थ है **कथंचित्** किसी अपेक्षा से स्यात् की व्याकरणा व्युत्पत्ति इस प्रकार है—अस् धातु का विधिलिंग लकार प्रथम पुरुष एक वचन का रूप है। जैन साहित्य का पर्यवेक्षण करने पर यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि स्यात् को सापेक्ष विधान का वाचक अव्यय बनाकर अपने अनेकान्तात्मक विचार को प्रकट करने का साधन बताया गया है। स्यात् और कथंचित् ये दोनों ही एक अर्थ के परिबोधक हैं। स्यात् श्रोता को विवक्षित धर्म का प्रधान रूप से ज्ञात कराता है और पदार्थ के अविवक्षित धर्मों के अस्तित्व की तत्प्रतिपक्षी धर्म की सूचना देता है इस पद के साथ किसी भी पदार्थ का विवेचन अधिक-से-अधिक सात प्रकार से हो सकता है। सात से भी अधिक प्रकारों से वस्तु का विश्लेषण सम्भव नहीं है। इसी कारण इसे सप्तभंगी कहते हैं। वे सात भंग इस प्रकार हैं :

(१) स्यात् अस्ति घटः,
(२) स्यात् नास्ति घटः,
(३) स्यात् अस्ति नास्ति घटः,
(४) स्यात् अवक्तव्य घटः,
(५) स्यात् अस्ति अवक्तव्य घटः,
(६) स्यात् नास्ति अवक्तव्य घटः,
(७) स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य घटः।

प्रस्तुत सप्तभंगी में **अस्ति, नास्ति** और **अवक्तव्य** ये तीन ही मूलभूत भंग हैं। इसमें से अस्ति, नास्ति, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य ये तीन द्विसंयोगी भंग हैं। इस तरह सात भंग होते हैं। प्रत्येक भंग निश्चयात्मक है, वह कभी-कभार भी अनिश्चयात्मक नहीं हो सकता। यही कारण है कि अनेक बार एक ही का प्रयोग भी होता रहा है, जैसेकि स्याद् घट अस्त्येव। यहां पर **एव** का प्रयोग **स्वचतुष्टय** की अपेक्षा निश्चितरूपेण घट का अस्तित्व प्रकट करता है। यदि एव का प्रयोग नहीं हुआ, तथापि प्रत्येक कथन को निश्चयात्मक ही समझना चाहिए। स्याद्वाद सिद्धान्त ने संदेहास्पद कथन का समर्थन नहीं किया है और वह अनिश्चय का भी समर्थक नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि कोई भी वचन प्रयोग स्याद्वाद से सम्बन्धित है तो वह वचन निश्चयात्मक है।

प्रत्येक पदार्थ स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की दृष्टि से सत् है और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव की अपेक्षा से असत् है इस प्रकार एक ही पदार्थ के सत् और असत् होने में कोई विरोध नहीं है।

स्याद्वाद और सप्तभंगी इन दोनों में व्याप्य-व्यापक-भाव सम्बन्ध रहा है। स्याद्वाद व्याप्य है और सप्तभंगी व्यापक है। यहां तक कि प्रत्येक पदार्थ अनन्तधर्मात्मक है, एतदर्थ सप्तभंगी के स्थान पर अनन्तभंगी क्यों नहीं स्वीकार की जाये। उक्त प्रश्न चिंतनीय है, इसका समाधान भी अवश्य है। प्रत्येक वस्तु में अनन्त-अनन्त धर्म विद्यमान हैं और हर धर्म को संलक्ष्य में रखकर एक-एक सप्तभंगी बनती है, इससे यह स्पष्ट है कि अनन्त धर्मों की अनन्त सप्तभंगी होती हैं। यदि एक धर्म का ही भंग होता है तो अनन्त धर्मों की अनन्त भंगी हो सकती हैं पर यह कथन उचित नहीं है। वास्तविक स्थिति यह है कि एक धर्माश्रित एक सप्तभंगी है, इसलिए अनन्त धर्मों की अनन्त सप्त-भंगियाँ संभव हैं।

सप्तभंगीवाद में प्रत्येक भंग स्वधर्म की प्रधानता होती है और दूसरे धर्म गौण हो जाते हैं, प्रधानता और अप्रधानता इन दोनों की विवक्षा के लिए स्यात् का प्रयोग होता है। स्यात् पद जहां विवक्षित धर्म का प्रमुख रूप से उपस्थापन करता है, वहां अविवक्षित धर्म का पूर्ण-रूपेण निषेध न कर उसका गौण रूप से उपस्थान कर देता है।

स्याद्वाद सिद्धान्त में पदार्थ के स्वरूप का विवेचन सापेक्ष दृष्टि से किया जाता है। सातों भंगों का जो आधार है वह काल्पनिक नहीं है। वरन् वस्तु का विविध और व्यापक रूप ही है। सप्तभंगी में वस्तु के अस्तित्व और नास्तित्व के सम्बन्ध में गम्भीर विचारणा की गई है। इसमें जो अस्तित्व और नास्तित्व का विधान है, वह वास्तव में स्वचतुष्टय और परचतुष्टय के आधार पर है।

ये सातों ही वचन पद्धतियां अपने-अपने स्थान पर महत्वपूर्ण हैं और उतनी सार्थकता रखती हैं। यह सच हैं कि प्रत्येक भंग अलग-अलग रूप में वस्तुमात्र के एक अंश को ही प्रकट करता है। उसके पदार्थ के संपूर्ण स्वरूप को नहीं इसीलिए जैन दर्शन का उन्मुक्त घोष है कि इन सप्तवचन-पद्धतियों में से प्रतिपादन-कर्त्ता अपने मंतव्य को अभिव्यक्त करने के लिए उस वचन-पद्धति का उपयोग करता है, उसके पूर्व वह स्यात् का प्रयोग अवश्य करे। जिससे यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि वस्तु की जो स्थिति है, उसमें अन्य सम्भावनाएं हैं।

ये सातों ही भंग जब सकलादेशी होते हैं, तब वे प्रमाणवाक्य कहलाते हैं और जब वे विकलादेशी होते हैं तब नयवाक्य कहलाते हैं। इसी प्रमुख आधार पर सप्तभंगी का वर्गीकरण दो प्रकार से हुआ—प्रमाणसप्तभंगी और नयसप्तभंगी।

यह तो पूर्णतः स्पष्ट है कि प्रत्येक वस्तु-तत्व में अनन्त-अनन्त गुण-धर्म विद्यमान हैं। किसी भी एक वस्तु का सम्पूर्ण रूप से परिज्ञान करने के लिए उन अनन्त शब्दों का प्रयोग करना अतीव आवश्यक है, किन्तु यह सम्भव ही नहीं है। क्योंकि अनन्त शब्दों का प्रयोग करने के लिए भी अनन्तकाल चाहिए। किन्तु, मानव का जो जीवन काल है, वह वास्तव में परिमित है। अनन्तकाल नहीं है, इस पर से यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी मनुष्य अपने समग्र जीवन में एक भी पदार्थ का पूर्णतया प्रतिपादन नहीं कर सकता। इसलिए एक शब्द के द्वारा ही संपूर्ण अर्थ का परिबोध करना होता है। यह तथ्य ज्ञातव्य है कि बाह्य दृष्टिकोण से ऐसा भी परिज्ञात होता है कि वह एक ही धर्म का प्रति-पादन कर देता है। किन्तु, प्राधान्यवृत्ति अर्थात् अभेदोपचार की दृष्टि से एक शब्द के द्वारा एक धर्म का कथन होने पर भी अखंड रूप में अनंत-धर्मात्मक संपूर्ण गुण धर्मों का युगपत् प्रतिपादन हो जाता है। एक ही शब्द से अनन्त गुण पदार्थों के पिण्ड स्वरूप संपूर्ण वस्तु का युगपत् परि-ज्ञान हो जाता है। इसको प्रमाण-सप्तभंगी कहते हैं।

इस विराट् विश्व की प्रत्येक वस्तु गुण और पर्याय स्वरूप है। गुण और पर्याय इन दोनों का परस्पर भेदाभेद सम्बन्ध है। जिस समय में भेद दृष्टि से वस्तु के स्वरूप का कथन किया जाता है। द्रव्य पदार्थ को गौण और पर्याय स्वरूप अर्थ को मुख्य माना जाता है। इसी को नय-सप्तभंगी कहते हैं। नय-सप्तभंगी में भेदवृत्ति या भेदोपचार का कथन किया जाता है।

इन दोनों में मुख्य रूप से अन्तर यह है कि नय विकलादेश है और प्रमाण सकलादेश है। जिस समय प्रमाण सप्तभंगी के द्वारा पदार्थ का युगपत् परिबोध होता है, उस समय गुण और पर्यायों में काल, आत्मरूप, अर्थ, सम्बन्ध, उपकार आदि अभेदवृत्ति का उपचार होता है और अस्ति या नास्ति प्रभृति किसी भी पद से गुणपर्याय स्वरूप वस्तु का युगपत् परिज्ञान होता है। जिस समय नयसप्तभंगी के द्वारा वस्तु-तत्व का अधिगम किया जाता है, उस समय गुण पर्याय में काल आत्मरूप अर्थ आदि के द्वारा भेद का उपचार होता है और अस्तित्व नास्तित्व प्रभृति किसी शब्द के द्वारा ही द्रव्यगत अस्तित्व नास्तित्व आदि किसी एक विवक्षित गुण पर्याय का प्रमुख रूप से क्रमशः प्रतिपादन होता है।

प्रमाण और नय इन दोनों की जो विवक्षा है, वह वस्तुतः पदार्थगत अनेकांत के परिबोध के लिये है और सप्तभंगी की जो व्यवस्था है वह तत्प्रतिपादक वचन-पद्धति को समझने के लिए है। स्याद्वाद में सप्तभंगी का गंभीर रहस्य रहा हुआ है।

प्रस्तुत विषय अपने आप में गंभीरता को लिए हुए हैं, तथापि विषय की गंभीरता को सुस्पष्ट करने के लिए उस विविध पहलू पर पर्याप्त प्रकाश डालने का विनम्र प्रयत्न चल रहा है कि स्याद्वाद सिद्धान्त में विविध विवक्षाओं से पदार्थ की सत्यता का व्याख्यान किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है। सत्य विराट् और अखण्ड है। शब्दों के असीम घेरे में वस्तु के अनन्त-अनन्त गुणों की व्याख्या करना कदापि संभव नहीं है, किन्तु यह भी ज्ञातव्य है कि उसके केन्द्र में मुख्य पहलुओं को अलग-अलग रूप से समाहार रूप में समझकर उस पदार्थ की अखण्डता का परिबोध किया जाता है। इस सिद्धान्त की गौरव गरिमा स्वयमेव सिद्ध है कि वह विभिन्न दृष्टियों को एक ही केन्द्र में संस्थापित करता है और वस्तु की सत्यता का विवेचन करता है, इससे यह स्पष्ट होता है कि स्याद्वाद समस्त विरोधात्मक विचारों को शान्त करता है। वस्तु के स्वरूप का सच्चा परिचायक है। इस सिद्धान्त के अभाव में पग-पग पर विसंवाद खड़े होते रहते हैं। जब अनेकान्तवाद स्याद्वाद की कल्याणकारिणी महागंगा में रहता है, तब किनारों के मिथ्यावादों का निराकरण भी स्वतः हो जाता है। यह मौलिक और विशिष्ट वाद अपनी अलौकिक विभिन्न नयों की तरल उत्ताल तरंगों से तरंगित होता है और वह अनेकान्तात्मक पदार्थ के विषय में सुस्पष्ट रीत्या प्रतिपादन करता है।

सारपूर्ण शब्दों में यह कथन भी समुचित होगा कि जैन दर्शन में समन्वयात्मक दृष्टिकोण को लेकर स्याद्वाद का आविष्कार हुआ। विविध दृष्टियों को यथाप्रसंग कभी मुख्य तो कभी गौण करने पर समन्वय रूपी नवनीत उपलब्ध होता है। यह समन्वय विधि यथार्थवाद की आधारभूमि पर निर्मित है। अतः स्याद्वाद सिद्धान्त की व्यापक परिधि में निरपेक्ष काल्पनिक दृष्टिकोण का अवकाश नहीं है।

वस्तुतः स्याद्वाद दार्शनिक विवादों में वैचारिक समन्वय की संस्थापना करता है और वह दार्शनिक क्षितिज पर सहस्र किरण दिवाकर की भाँति दीप्तिमान है, और उसकी दिव्य रश्मियाँ युग-युग तक विकीर्ण होती रहेंगी।

स्यात् अर्थात् किसी अपेक्षा से कहना **स्याद्वाद** है। एक पदार्थ में बहुत से विरोधी प्रतीत होने वाले स्वभाव होते हैं। सबका वर्णन एक बार या एक ही काल में नहीं हो सकता, एक का ही हो सकता है। जिस काल में जिस स्वभाव का कथन करना हो, उसके साथ स्यात्—कथञ्चित् या किसी अपेक्षा से का प्रयोग करना ही **स्याद्वाद** है। उदाहरण के लिए एक पुरुष एक समय में पिता, पुत्र, भाई, भान्जा, मामा आदि अनेक रूपों से युक्त होता है। उसके किसी एक रूप का कथन इस प्रकार करना चाहिए—स्यात् पिता है अर्थात् किसी अपेक्षा से (अपने पुत्र की अपेक्षा से) पिता है। स्यात् पुत्र है अर्थात् किसी अपेक्षा से (अपते माता-पिता की अपेक्षा से) पुत्र है। स्यात् भ्राता है अर्थात् अपने भ्राता या भगिनी की अपेक्षा से भ्राता है, इत्यादि। इसी प्रकार आत्मा भी अस्ति स्वभाव, नास्ति स्वभाव, नित्य स्वभाव, अनित्य स्वभाव, एक स्वभाव, अनेक स्वभाव आदि विरोधी स्वभावों का धारक है। इन्हीं विरोधी स्वभावों को समझाने के लिए सात भंग कहे जाते हैं, जो गुरु-शिष्य के मध्य सात प्रश्नोत्तर हैं। जैसे—

१. क्या आत्मा नित्य है ? हां, आत्मा सदा बने रहने के कारण नित्य है—**स्यात् आत्मा नित्यः स्वभावः।**

२. क्या आत्मा अनित्य है ? हां, अवस्थाओं को परिवर्तित करते रहने के कारण आत्मा अनित्य है—**स्यात् आत्मा अनित्यः स्वभावः।**

३. क्या आत्मा नित्य अनित्य दोनों है ? हां, आत्मा एक ही काल में नित्यानित्य स्वभावों से युक्त है—**स्यात् आत्मा नित्यानित्यः स्वभावः।** जैसे सोने की अंगूठी को तोड़कर कुण्डल बनाने पर उसमें सोना नित्य है, किन्तु कुण्डल या अंगूठी रूप पर्याय अनित्य है।

४. क्या हम दोनों को एक साथ नहीं कह सकते ? हां, शब्दों में शक्ति न होने से आत्मा अवक्तव्य है—**स्यात् आत्मा अवक्तव्यः स्वभावः।**

५. क्या अवक्तव्य होते हुए नित्य है ? हां, जिस समय अवक्तव्य है, उस समय नित्य भी है—**स्यात् आत्मा नित्यावक्तव्यः स्वभावः।**

६. क्या अवक्तव्य होते हुए अनित्य है ? हां, जिस समय अवक्तव्य है, उस समय अनित्य भी है—**स्यात् आत्मा अनित्यावक्तव्यः स्वभावः।**

७. क्या अवक्तव्य होते हुए नित्यानित्य भी है ? हां, जिस समय अवक्तव्य है, उस समय नित्यानित्य भी है—**स्यात् आत्मा नित्यानित्यावक्तव्यः स्वभावः।**

इस प्रकार किसी भी पदार्थ को समझने के लिए स्याद्वाद आवश्यक है। जब तक स्याद्वाद से पदार्थ को न समझेंगे तब तक हम पदार्थ को ठीक नहीं समझ सकते। प्रत्येक पदार्थ में स्व की अपेक्षा से भाव तथा पर की अपेक्षा से अभाव होता है, अतः एक पदार्थ को दूसरे से पृथक् समझने के लिए यह सिद्धान्त दर्पणवत् है। राजवार्त्तिककार अकलंकदेव ने कहा भी है—**स्वपरादानापोहनव्यवस्थापाद्यं खलु वस्तुनो वस्तुत्वम्।**

(आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज कृत उपदेश-सार-संग्रह, भाग-६, दिल्ली, वी०नि०सं० २४९० से उद्धृत)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org